मैं और मेरा देश

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

लेखक परिचय – कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का जन्म सन् 1906 ई. में सहारनपुर जिले के देवबंद ग्राम में हुआ था। प्रारंभ से ही राजनीतिक एवं सामाजिक कार्यों में गहरी रुचि होने के कारण आपको अनेक बार जेल-यात्राएँ करनी पड़ी।

पत्रकारिता के क्षेत्र में आपने 'ज्ञानोदय', 'नया जीवन' और 'विकास' नामक पत्रों का सम्पादन कार्य किया है। मिश्रजी गांधीवादी थे। विचारों की उच्चता, आचरण की पवित्रता, और जीवन की सादगी आपके व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएँ थी। प्रभाकर जी ने अपने वैयक्तिक स्नेह एवं सामर्थ्य से भी हिन्दी के अनेक नये लेखकों को प्रेरित और प्रोत्साहित किया है। मिश्रजी का निधन सन् 1995 में हुआ।

मिश्रजी ने निबंध, संस्मरण, रेखाचित्र और रिपोर्ताज लिखे हैं। रिपोर्ताज लेखन में वे सिद्धहस्त थे। छोटी-छोटी घटनाओं को लेकर जीवन के बड़े सत्यों का उद्घाटन बड़ी ही सहजता के साथ सफलतापूर्वक करते थे। गंभीर विषयों पर सरल और सरस शैली में लिखी गईं आपकी रचनाएँ पाठकों को सहज ही आकर्षित करती हैं। ये रचनाएँ प्रेरणास्पद, उद्बोधक और मर्मस्पर्शी हैं।

प्रमुख रचनाएँ – निबंध : 'जिन्दगी मुस्कुराई', 'माटी हो गई सोना', 'बाजे पायलिया के घुँघरू ', 'दीप जले-शंख बजे' आदि। निबंध संग्रह में ही कुछ संस्मरण और रेखाचित्र समाविष्ट हैं।

रिपोर्ताज : 'क्षण बोले : कण मुस्कुराए'

लघु कथा संग्रह : 'धरती के फूल' आदि।

केन्द्रीय भाव

प्रस्तुत निबंध में निबंधकार ने व्यक्ति के जीवन-विकास में घर, नगर, समाज की भूमिका का उल्लेख करते हुए देश के प्रति उसके कर्तव्य बोध को जागृत करने के सार्थक सूत्र प्रदान किए हैं। देश की स्वतंत्रता को मूल्यवान माना है – व्यक्ति और देश के अंतर्संबंधों को व्याख्यायित करते हुए निबंधकार ने देश के गौरव और सम्मान की प्रतिष्ठा के लिए प्रत्येक व्यक्ति की देश-निष्ठा को रेखांकित किया है। अनेक उदाहरणों के माध्यम से इस तथ्य को प्रतिपादित किया है कि व्यक्ति जिस प्रकार अपने सम्मान और अपने लोगों के प्रति चिंतित रहता है, वैसी ही चिंता उसे अपने देश के प्रति भी रखना है। व्यक्ति के आचरण से ही देश के गौरव और सम्मान का निर्धारण किया जाता है। व्यक्ति का चिंतन देश परक होगा तो देश की प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी। अपने देश के गौरव को बढ़ाने के लिए निबंधकार ने स्पष्ट किया है कि देश के प्रत्येक नागरिक को अपने भीतर देश के लिए शक्ति बोध और सौन्दर्य बोध जागृत करना पड़ेगा। व्यक्ति कमजोर पड़ता है तो देश कमजोर पड़ता है। व्यक्ति अपने पर्यावरण को स्वच्छ रखता है, तो वह देश के सौन्दर्य को ही बढ़ा रहा है। देश के लिए नागरिक की भी जिम्मेदारियाँ बनती हैं, उन्हें पूरा करके ही वह देश को समुन्नत और सुंदर बना सकता है। निबंध दृष्टांत शैली में रचा गया है इसलिए सहज, बोधगम्य है।

मैं और मेरा देश

मैं अपने घर में जनमा था, पला था।

अपने पड़ोस में खेलकर, पड़ोसियों की ममता-दुलार पा बड़ा हुआ था।

अपने नगर में घूम-फिर कर, वहाँ के विशाल समाज का सम्पर्क पा, वहाँ से संचित ज्ञान-भण्डार का उपयोग कर, उसे अपनी सेवाओं का दान दे, उसकी सेवाओं का सहारा पाकर और इस तरह एक मनुष्य से भरा-पूरा नगर बनकर मैं खड़ा हुआ था।

मैं अपने नगर के लोगों का सम्मान करता था, वे भी मेरा सम्मान करते थे।

मुझे बहुतों की अपने लिए जरूरत पड़ती थी। मैं भी बहुतों की जरूरत या उनके लिए जवाब था।

इस तरह मैं समझ रहा था कि मैं अपने में अब पूरा हो गया हूँ, पूरा फैल गया हूँ, पूरा मनुष्य हो गया हूँ।

एक दिन आनन्द की इस दीवार में दरार पड़ गई; और तब मुझे सोचना पड़ा कि अपने घर, अपने पड़ोस, अपने नगर की सीमाओं में ममता, सहारा, ज्ञान और आनन्द के उपहार पाकर भी मेरी स्थिति एकदम हीन है; हीन भी इतनी कि मेरा कहीं भी कोई भी अपमान कर सकता है, एक मामूली अपराधी की तरह; और मुझे यह भी अधिकार नहीं कि मैं उससे अपमान का बदला लेना तो दूर रहा उसके लिए कहीं अपील या दया-प्रार्थना कर सकूँ।

क्या कोई भूकम्प आया था, जिससे दीवार में दरार पड़ गई ?

जी हाँ एक भूकम्प आया था, जिससे दीवार में दरार पड़ गई; और लीजिए आपको कोई नया प्रश्न न पूछना पड़े, इसलिए मैं अपनी ओर से ही कह रहा हूँ कि यह दीवार थी मानसिक विचारों की, इसलिए यह भूकम्प भी किसी प्रान्त या प्रदेश में नहीं उठा; मेरे मानस में ही उठा था।

मानस में भूकम्प उठा था ?

हाँ जी, मानस में भूकम्प उठा था; और भूकम्प क्या - कोई धरती थोड़े ही हिली थी, आकाश थोड़े ही काँपा था, एक तेजस्वी पुरुष का अनुभव ही भूकम्प था, जिसने मुझे हिला दिया।

वे तेजस्वी पुरुष थे स्वर्गीय पंजाब-केसरी लाला लाजपत राय। अपने महान् राष्ट्र की पराधीनता के दीन दिनों में जिन लोगों ने अपने रक्त से गौरव के दीपक जलाये और जो घोर अंधकार और भयंकर बवण्डरों के झकझोरों में जीवनभर खेल, उन दीपकों को बुझने से बचाते रहे, उन्हीं में एक थे वे लालाजी। उनकी कलम और वाणी दोनों में तेजस्विता की अद्‌भुत किरणें थी।

उनका वह अनुभव यह था। मैं अमेरिका गया, इंग्लैण्ड गया, फ्रांस गया और संसार के दूसरे देशों में भी घूमा, पर जहाँ भी मैं गया, भारतवर्ष की गुलामी की लज्जा का कलंक मेरे माथे पर लगा रहा। क्या सचमुच यह अनुभव एक मानसिक भूकम्प नहीं है, जो मनुष्य को झकझोर कर कहे कि किसी मनुष्य के पास संसार के ही नहीं, यदि स्वर्ग के भी सब उपहार और साधन हों पर उसका देश गुलाम हो या किसी भी दूसरे रूप में ही हो तो वे सारे उपहार और साधन उसे गौरव नहीं दे सकते।

लो, एक और बात बताता हूँ आपको - जीवन को दर्शनशास्त्रियों ने बहुमुखी बताया है। उसकी अनेक धाराएँ हैं। सुना नहीं आपने कि जीवन एक युद्ध है; और युद्ध में लड़ना ही तो काम नहीं होता। लड़ने वालों को रसद न पहुँचे तो वे कैसे लड़ें। किसान ही खेती न उपजाए तो रसद पहुँचाने वाले क्या करें और लो, जाने दो बड़ी बातें - युद्ध में जय बोलने वालों का भी महत्व है।

जय बोलने वालों का ?

हाँ जी, युद्ध में जय बोलने वालों का भी बहुत महत्व है। कभी मैच देखने का अवसर मिला ही होगा आपको! देखा नहीं आपने कि दर्शकों की तालियों से खिलाड़ियों के पैरों में बिजली लग जाती है; और गिरते खिलाड़ी उभर जाते हैं। कवि-सम्मेलनों और मुशायरों की सफलता दाद देने वालों पर निर्भर करती है। इसलिए मैं अपने देश का कितना भी साधारण नागरिक क्यों न हूँ, अपने देश के सम्मान की रक्षा के लिए कुछ भी कर सकता हूँ। अकेला चना क्या भाड़ फोड़े – यह कहावत, मैं अपने अनुभव के आधार पर ही आपसे कह रहा हूँ – कि सौ फीसदी झूठ है। इतिहास साक्षी है, बहुत बार अकेले चने ने ही भाड़ फोड़ा है; और ऐसा फोड़ा है कि भाड़ में खिल-खिल ही नहीं हो गया, उसका निशान तक ऐसा छूमन्तर हुआ कि कोई यह भी न जान पाया कि वह बेचारा आखिर था कहाँ ?

हमारे देश के महान सन्त स्वामी रामतीर्थ एक बार जापान गए। वे रेल में यात्रा कर रहे थे कि एक दिन ऐसा हुआ कि उन्हें खाने को फल न मिले और उन दिनों फल ही उनका भोजन था। गाड़ी एक स्टेशन पर ठहरी तो वहाँ भी उन्होंने फलों की खोज की, पर वे पा न सके। उनके मुँह से निकला-जापान में शायद अच्छे फल नहीं मिलते।

एक जापानी युवक प्लेटफार्म पर खड़ा था। वह अपनी पत्नी को रेल में बैठाने आया था। उसने यह शब्द सुन लिए। सुनते ही वह अपनी बात बीच में छोड़ कर भागा और काफी दूर से एक टोकरी ताजे फल लाया। वे फल उसने स्वामी रामतीर्थ को भेंट करते हुए कहा – लीजिए, आपको ताजे फलों की जरूरत थी।

स्वामी जी ने समझा कि यह कोई फल बेचने वाला है और उसके दाम पूछे, पर उसने दाम लेने से इन्कार कर दिया। बहुत आग्रह करने पर उसने कहा : आप इनका मूल्य देना ही चाहते हैं तो वह यह है कि आप अपने देश में जाकर किसी से यह न कहिएगा कि जापान में अच्छे फल नहीं मिलते।

स्वामी जी युवक का उत्तर सुनकर मुग्ध हो गए, और वे क्या मुग्ध हो गए उस युवक ने अपने इस कार्य से अपने देश का गौरव जाने कितना बढ़ा दिया।

इस गौरव की ऊँचाई का अनुमान आप दूसरी घटना सुनकर ही पूरी तरह लगा सकते हैं। एक दूसरे देश का निवासी एक युवक जापान में शिक्षा लेने आया। एक दिन वह सरकारी पुस्तकालय से एक पुस्तक पढ़ने को लाया जिसमें कुछ दुर्लभ चित्र थे। ये चित्र इस युवक ने पुस्तक में से निकाल दिए और पुस्तक वापस कर आया। किसी जापानी विद्यार्थी ने यह देख लिया और पुस्तकालय को इसकी सूचना दे दी। पुलिस ने तलाशी लेकर वे चित्र उस विद्यार्थी के कमरे में बरामद किए, और उस विद्यार्थी को जापान से निकाल दिया गया।

मामला यहीं तक रहता तो कोई बात न थी। अपराधी को दण्ड मिलना ही चाहिए। पर मामला यहाँ तक नहीं रुका और पुस्तकालय के बाहर बोर्ड पर लिख दिया गया कि उस देश का (जिसका वह विद्यार्थी था) कोई निवासी इस पुस्तकालय में प्रवेश नहीं कर सकता।

मतलब साफ है, एकदम साफ – कि जहाँ एक युवक ने अपने काम से अपने देश का सिर ऊँचा किया था, वहीं एक युवक ने अपने देश के मस्तक पर कलंक का ऐसा टीका लगाया, जो जाने कितने वर्षों तक संसार की आँखों में उसे लांछित करता रहा।

इन घटनाओं से क्या यह स्पष्ट नहीं है कि हरेक नागरिक अपने देश के साथ बँधा हुआ है और देश की हीनता और गौरव का ही फल उसे नहीं मिलता, उसकी हीनता और गौरव का फल उसके देश को मिलता है।

मैं अपने देश का नागरिक हूँ; और मानता हूँ कि मैं अपना देश हूँ। जैसा मैं अपने लाभ और सम्मान के लिए हरेक छोटी-छोटी बात पर ध्यान देता हूँ, वैसा ही मैं अपने देश के लाभ और सम्मान के लिए भी छोटी-छोटी बातों पर ध्यान दूँ। यह मेरा कर्तव्य है और जैसे मैं अपने सम्मान और साधनों से अपने जीवन में सहारा पाता हूँ, वैसे ही देश के सम्मान और साधनों से भी सहारा पाऊँ-यह मेरा अधिकार है। बात यह है कि मैं और मेरा देश दो अलग चीज तो हैं ही नहीं।

मैंने जो कुछ जीवन में अध्ययन और अनुभव से सीखा है, वह यही है कि महत्व किसी कार्य की विशालता में नहीं है, उस कार्य के करने की भावना में है। बड़े से बड़ा कार्य हीन है, यदि उसके पीछे अच्छी भावना नहीं है, और छोटे से छोटा कार्य भी महान है, यदि उसके पीछे अच्छी भावना है।

महान कमालपाशा उन दिनों अपने देश तुर्की के राष्ट्रपति थे। राजधानी में उनकी वर्षगाँठ का उत्सव समाप्त कर जब वे अपने भवन में ऊपर चले गए, तो एक देहाती बूढ़ा उन्हें वर्षगांठ का उपहार भेंट करने आया। सेक्रेटरी ने कहा, ''अब तो समय बीत गया है।'' बूढ़े ने कहा, ''मैं तीन मील से पैदल चलकर आ रहा हूँ, इसलिए मुझे देर हो गई''

राष्ट्रपति तक उसकी सूचना भेजी गई, कमालपाशा विश्राम के वस्त्र बदल चुके थे, वे उन कपड़ों में नीचे चले आए, और उन्होंने बूढ़े किसान का उपहार स्वीकार किया। यह उपहार मिट्टी की छोटी हँडिया में पाव भर शहद था, जिसे बूढ़ा स्वयं तोड़कर लाया था। कमालपाशा ने हँडिया को स्वयं खोला और उसमें से दो उँगलियाँ भरकर चाटने के बाद तीसरी उँगली में भरकर बूढ़े के मुँह में दे दी, बूढ़ा निहाल हो गया।

राष्ट्रपति ने कहा – दादा, आज सर्वोत्तम उपहार तुमने ही मुझे भेंट किया क्योंकि इसमें तुम्हारे हृदय का शुद्ध प्यार है। उन्होंने आदेश दिया कि राष्ट्रपति की शाही कार में शाही सम्मान के साथ उनके दादा को गाँव तक पहुँचा आए।

क्या यह शहद बहुत कीमती था ? क्या उसमें मोती-हार मिले हुए थे ? ना, उस शहद के पीछे उसके लाने वाले की भावना थी जिसने उसे सौ लालों का एक लाल बना दिया।

हमारे देश को दो बातों की सबसे पहले और सबसे ज्यादा जरूरत है। एक शक्तिबोध और दूसरा सौन्दर्य बोध। बस, हम यह समझ लें कि हमारा कोई भी काम ऐसा न हो जो देश में कमजोरी की भावना को बल दे या कुरुचि की भावना को ही।

जरा अपनी बात को और स्पष्ट कर दीजिए। यह आपकी राय है और मैं इससे बहुत खुश हूँ कि आप मुझसे यह स्पष्टता माँग रहे हैं।

क्या आप चलती रेलों में, मुसाफिर खानों में, क्लबों में, चौपालों पर और मोटर-बसों में कभी ऐसी चर्चा करते हैं कि हमारे देश में यह नहीं हो रहा है, वह नहीं हो रहा है और गड़बड़ है, बड़ी परेशानी है, साथ ही इन स्थानों में या किसी तरह के दूसरे स्थानों में आप कभी अपने देश के साथ दूसरे देशों की तुलना करते हैं और इस तुलना में अपने देश को हीन और दूसरे देश को श्रेष्ठ सिद्ध किया जाता है।

यदि इस प्रश्न का उत्तर हाँ है तो आप देश के शक्ति बोध को भयंकर चोट पहुँचा रहे हैं और आपके हाथों देश के सामूहिक मानसिक बल का ह्रास हो रहा है। सुनी है आपने शल्य की बात ? यह महाबली कर्ण का सारथी था। जब भी कर्ण अपने पक्ष में विजय की घोषणा करता, हुंकार भरता, वह अर्जुन की अजेयता का एक हल्का सा उल्लेख कर देता। बार-बार के इस उल्लेख ने कर्ण के सघन आत्म विश्वास में सन्देह की तरेड़ डाल दी जो उसके भावी पराजय की नींव रखने में सफल हो गई।

अच्छा, आप इस तरह की चर्चा कभी नहीं करते! तो मैं दूसरा प्रश्न पूछता हूँ। क्या आप कभी केला खाकर छिलका रास्ते में फेंकते हैं ? अपने घर का कूड़ा बाहर फेंकते हैं या मुँह से गन्दे शब्दों में गन्दे भाव प्रकट करते हैं ? इधर की उधर,उधर की इधर लगाते हैं ? अपना घर, दफ्तर, गली गन्दा रखते हैं ? होटलों – धर्मशालाओं में या ऐसे ही दूसरे स्थानों में, जीनों में, कोनों में पीक थूकते हैं ? उत्सवों, मेलों, रेलों और खेलों में ठेलमठेल करते हैं और इसी तरह किसी भी रूप में क्या सुरुचि और सौन्दर्य को आपके किसी काम से ठेस लगती है?

यदि आपका उत्तर हाँ है,तो आपके द्वारा देश के सौन्दर्य-बोध को भंयकर आघात पहुँच रहा है और आपके द्वारा देश की संस्कृति को गहरी चोट पहुँच रही है।

क्या कोई ऐसी कसौटी भी बनाई जा सकती है जिससे देश के नागरिकों को आधार बनाकर देश की उच्चता और हीनता को हम तौल सकें।

लीजिए, चलते-चलते आपके इस प्रश्न का उत्तर दे ही दूँ । इस उच्चता और हीनता की कसौटी ह चुनाव।

जिस देश के नागरिक यह समझते हैं कि चुनाव में किसे अपना मत देना चाहिए और किसे नहीं, वह देश उच्च है, जहाँ के नागरिक गलत लोगों के उत्तेजक नारों या व्यक्तियों के गलत प्रभाव में आकर मत देते हैं, वह हीन हैं।

इसलिए मैं कह रहा हूँ कि मेरा यानी हरेक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह जब भी कोई चुनाव हो, ठीक मनुष्य को अपना मत दें; और मेरा अधिकार है कि मेरा मत दिए बिना कोई भी आदमी, वह संसार का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष ही क्यों न हो, किसी अधिकार की कुर्सी पर न बैठ सके।

◆◆◆

अभ्यास

बोध प्रश्न -

अति लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. पंजाब केसरी के नाम से कौन जाना जाता है?
2. 'दीवार में दरार पड़ गई' का आशय किस से है?
3. जापानी युवक ने स्वामी रामतीर्थ को दिए गए फल के मूल्य के रूप में क्या माँगा ?
4. बूढ़े किसान ने राष्ट्रपति को कौन सा उपहार दिया ?

लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. तेजस्वी पुरुष लाला लाजपत राय की दो विशेषताएँ कौन सी थीं ?
2. देहाती बूढ़ा कमाल पाशा के पास क्यों गया था?
3. स्वामी रामतीर्थ जापानी युवक का उत्तर सुनकर क्यों मुग्ध हो गए। ?
4. लेखक के अनुसार हमारे देश को किन दो बातों की सर्वाधिक आवश्यकता है ?
5. देश के सामूहिक मानसिक बल का ह्रास कैसे हो रहा है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

1. 'जय' बोलने वालों का महत्व प्रतिपादित कीजिए।
2. जापान में शिक्षा लेने आए विद्यार्थी की कौन सी गलती से उसके देश के माथे पर कलंक का टीका लग गया ?
3. देश के शक्तिबोध को चोट कैसे पहुँचती है ?
4. 'देश के सौन्दर्य बोध को आघात लगता है तो संस्कृति को गहरी चोट लगती है', इस कथन की विवेचना कीजिए ?
5. देश के लाभ और सम्मान के लिए नागरिकों के कर्तव्यों का वर्णन कीजिए ।

भाषा अध्ययन -

निम्नलिखत सामासिक शब्दों का विग्रह करके समास का नाम बताइए -

आजीवन, भरा-पूरा, महापुरुष, एकदंत, चौराहा

ध्यान से पढ़िए

- पुस्तकालय को इसकी सूचना दे दी।
- लालाजी ने महान राष्ट्र को पराधीनता से बचाने का प्रयास किया।
- आज सर्वोत्तम उपहार तुमने हमें दिया।

उपयुक्त रेखांकित शब्द दो शब्दों के मेल से बने हैं।

पुस्तकालय = पुस्तक + आलय – अ+आ=आ

पराधीनता = पर + आधीनता – अ+आ=आ

सर्वोत्तम = सर्व + उत्तम – अ+उ=ओ

जब दो ध्वनियाँ आपस में मिल जाती है तब वहाँ संधि होती है –

संधि के तीन प्रकार हैं –

1. स्वर संधि
2. व्यंजन संधि
3. विसर्ग संधि

स्वर सन्धि – दो निकटतम स्वरों के मेल से जो परिवर्तन होता है उसे स्वर संधि कहते हैं इसके पाँच भेद है।

(1) दीर्घ स्वर संधि (2) गुण स्वर संधि (3) वृद्धि स्वर संधि (4) यण स्वर संधि

(5) अयादि स्वर संधि

दीर्घ स्वर सन्धि नियमी करण – ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, के आगे ह्रस्व या दीर्घ स्वर आ, ई, ऊ, आए तो दोनों मिलकर क्रमश: आ,ई,ऊ बन जाते हैं।

यथा – अ+अ=आ – मत+अनुसार = मतानुसार

अ+आ=आ – परम+आनंद = परमानंद

आ+आ=आ – महा+आत्मा = महात्मा

इ+इ=ई – रवि+इन्द्र = रवीन्द्र

उ+उ=ऊ – लघु+उत्तरीय = लघूत्तरीय

दो सजातीय या समान स्वरों के मेल से स्वरों में जो परिवर्तन होता है, उसे दीर्घ स्वर सन्धि कहते हैं।

गुण स्वर संधि (नियमी करण) -

1. यदि अ या आ के आगे इ या ई आए तो दोनों के मिलने पर ए बनता है।
2. यदि अ या आ के आगे उ या ऊ आए तो दोनों के मिलने पर ओ बनता है।
3. यदि अ या आ के आगे ऋ आए तो दोनों के मिलने पर अर बनता है।

यथा – अ+इ = ए – देव+इन्द्र = देवेन्द्र

आ+उ = ओ – महा+उदय = महोदय

आ+ऋ = अर् – महा+ऋषि = महर्षि

उपरोक्त नियमों के अन्तर्गत आने वाले शब्दों को हम गुण स्वर सन्धि कहते हैं, अत: कह सकते हैं कि – यदि अ या आ के बाद इ या ई या उ या ऊ अथवा ऋ आए तो दोनों मिलकर क्रमश: ए, ओ, अर हो जाता है इसे गुण स्वर संधि कहते है।

वृद्धि संधि -

नियमीकरण – 1. यदि अ,आ के बाद ए,ऐ आए तो दोनों मिलकर 'ऐ' हो जाते हैं।

2. यदि अ, आ के बाद ओ, औ आए तो दोनों मिलकर 'औ' हो जाते हैं।

अ + ए	= ऐ	–	एक	+ एक	=	एकैक
आ + ए	= ऐ	–	सदा	+ एव	=	सदैव
अ + ऐ	= ऐ	–	मत	+ एक्य	=	मतैक्य
आ + ऐ	= ऐ	–	महा	+ ऐश्वर्य	=	महैश्वर्य
अ + ओ	= औ	–	दंत	+ ओष्ठ	=	दंतौष्ठ
आ + ओ	= औ	–	महा	+ ओज	=	महौज
अ + औ	= औ	–	परम	+ औषधि	=	परमौषधि
आ + औ	= औ	–	महा	+ औषधि	=	महौषधि

यदि अ, आ के बाद ए या ऐ आए तो मिलकर ऐ तथा यदि ओ या औ आए तो मिलकर औ हो जाते हैं। इस क्रिया को वृद्धि स्वर संधि कहते हैं।

अन्य स्वर सन्धि के नियम निम्नानुसार हैं –

यण संधि -

नियमीकरण – 1. यदि इ, ई के बाद कोई भिन्न स्वर आए तो इ, ई का 'य' हो जाता है।

2. यदि उ,ऊ के बाद कोई भिन्न स्वर आए तो उ,ऊ का व हो जाता है।

3. यदि ऋ के बाद कोई भिन्न स्वर आए तो ऋ का 'र' हो जाता है।

इ + अ	= य	–	अति	+ अधिक	=	अत्यधिक
इ + आ	= या	–	इति	+ आदि	=	इत्यादि
ई + अ	= य	–	नदी	+ अर्पण	=	नद्यर्पण
ई + आ	= या	–	सखी	+ आगमन	=	सख्यागमन
इ + उ	= यु	–	प्रति	+ उत्तर	=	प्रत्युत्तर
इ + ऊ	= यू	–	नि	+ ऊन	=	न्यून
इ + ए	= ये	–	प्रति	+ एक	=	प्रत्येक
ई + ऐ	= यै	–	देवी	+ ऐश्वर्य	=	देव्यैश्वर्य
उ + अ	= व	–	सु	+ अच्छ	=	स्वच्छ
उ + आ	= वा	–	सु	+ आगत	=	स्वागत
उ + इ	= वि	–	अनु	+ इति	=	अन्विति
उ + ए	= वे	–	अनु	+ एषण	=	अन्वेषण
ऋ + अ	= र	–	पितृ	+ अनुमति	=	पित्रनुमति
ऋ + आ	= रा	–	मातृ	+ आज्ञा	=	मात्राज्ञा
ऋ + इ	= रि	–	मातृ	+ इच्छा	=	मात्रिच्छा

ह्रस्व अथवा दीर्घ इ,उ, ऋ के बाद यदि कोई भिन्न स्वर आता है तो इ, ई के बदले 'य' तथा उ ऊ के बदले 'व' एवं ऋ के बदले 'र' हो जाता है तो उसे यण स्वर संधि कहते हैं।

इसी प्रकार स्वर सन्धि के अन्य प्रकार हैं, जिसमें –

अयादि संधि -

नियमीकरण – 1. यदि ए,ऐ,ओ, औ, से आगे कोई इनसे भिन्न स्वर आता है तो ए, का 'अय्' , ऐ का 'आय्' ओ का अव् तथा औ का आव् हो जाता है।

ए	+	अ	=	अय्	–	ने	+	अन	=	नयन
ऐ	+	अ	=	आय्	–	गे	+	अक	=	गायक
ओ	+	अ	=	अव्	–	पो	+	अन	=	पवन
औ	+	अ	=	आव्	–	पौ	+	अन	=	पावन
औ	+	इ	=	आवि	–	नौ	+	इक	=	नाविक
औ	+	उ	=	आवु	–	भौ	+	उक	=	भावुक

ए, ऐ, ओ, औ के बाद जब कोई भिन्न स्वर आता है तब ए के स्थान पर 'अय्', ओ के स्थान पर 'अव्' , ऐ के स्थान पर 'आय्' एवं औ के स्थान पर 'आव्' हो जाता है। इसे ही अयादि स्वर संधि कहते हैं।

प्रश्न 3 निम्नलिखित शब्दों का संधि विच्छेद कीजिए –

लघूत्सव, परमानन्द, सूर्योदय, नायक, वनौलक्ष

प्रश्न 4 निम्न शब्दों का सन्धि-विच्छेद करते हुए प्रयुक्त सन्धि का नाम लिखिए

यद्यपि, लंकेश, दिनेश, देवर्षि।

योग्यता-विस्तार

1. देश के महापुरुषों के चित्र खोजकर अभ्यास पुस्तिका पर चिपकाइए।
2. अपने क्षेत्र के स्वतंत्रता – संग्राम सेनानियों की सूची तैयार कीजिए।
3. विद्यालय में एक प्रश्न मंच का आयोजन कर 'छात्रों का उत्तरदायित्व' विषय पर प्रश्नोत्तर सत्र कीजिए ।
4. लाला लाजपतराय और भगतसिंह के प्रंसग पर कक्षा में चर्चा कीजिए ।

शब्दार्थ

ममता = अपनापन, प्रेम। **अपील** = पुनर्विचार का प्रार्थना पत्र। **बहुमुखी** = जीवन के अनेक क्षेत्र का अनुभव करने वाला। **रसद** = खाद्य सामग्री। **कामचोरी** = कार्य करने से जी चुराना। **सारथी** = रथ चलाने वाला। **दफ्तर** = कार्यालय। **ठेस** = आघात या चोट ।

महापुरुष श्री कृष्ण

वासुदेव शरण अग्रवाल

लेखक परिचय – पुरातत्ववेत्ता एवं इतिहासकार डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल का जन्म सन् 1904 ई. में हुआ था । लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.ए. करने के पश्चात् सन् 1941 में उन्होंने पी-एच.डी. तथा 1946 में डी.लिट की उपाधि प्राप्त की। आपने भारतीय पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष पद का कार्य बड़ी निष्ठा और लगन से सफलता पूर्वक सँभाला। सन् 1951 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कॉलेज ऑफ इन्डोलॉजी में प्रोफेसर नियुक्त हुए। आपका निधन 27 जुलाई सन् 1966 ई. को हुआ।

आपकी प्रमुख रचनाएँ – 'उरज्योति', 'कला और संस्कृति', 'कल्पवृक्ष', 'मलिक मुहम्मद जायसी: पद्मावत' 'पाणिनि कालीन भारत वर्ष', 'पृथ्वीपुत्र', 'भारत की मौलिक एकता', 'भारत सावित्री', 'माता भूमि' एवं 'हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन' हैं। आपने कालिदास के 'मेघदूत' एवं बाणभट्ट के 'हर्षचरित' की नवीन पीठिका प्रस्तुत की है। भारतीय साहित्य और संस्कृति के गंभीर अध्येता के रुप में आप प्रसिद्ध हैं।

डॉ. अग्रवाल हिन्दी के प्रतिभाशाली और विचारशील निबंधकार हैं। साहित्य, संस्कृति, जनपदीय एवं प्राचीन साहित्य पर गंभीर एवं श्रेष्ठ निबंध लिखें हैं। इन रचनाओं की भाषा प्रौढ़ एवं मँजी हुई है। भाषा तत्सम प्रधान संस्कृतनिष्ठ है। भाषा में मुहावरों के प्रयोग के कारण लाक्षणिकता आ गई है। इतिहास एवं पुरातत्व सम्बन्धी जानकारी आपके निबंधों में दिखाई देती है। रचनाओं में भाषा के मानक रूप के दर्शन होते हैं। निबंध प्राय: विवरणात्मक एवं कथात्मक शैली में होते हैं तो वाक्य विन्यास समास शैली में होते हैं। इनका हिन्दी पर पूर्ण अधिकार सर्वत्र दिखाई देता है। स्पष्टता, बोधगम्यता एवं प्रभावोत्पादकता आपके निबंधों को विशेष आकर्षक बनाते हैं।

केन्द्रीय भाव

प्रस्तुत पाठ में श्रीकृष्ण के महान व्यक्तित्व का भव्य रूप अंकित किया गया है। श्री कृष्ण के जीवन के प्रत्येक पक्ष से हमें प्रेरणा मिलती है। एक ओर रास रचाने और मुरली बजाने वाले कन्हैया और दूसरी ओर महाभारत युद्ध का संचालन और गीता का उपदेश देने वाले श्रीकृष्ण का समन्वय बेजोड़ है। कला, राजनीति, युद्ध, धर्म, दर्शन आदि में से प्रत्येक में श्रीकृष्ण पारंगत थे। इसीलिए उनका प्रभाव युग-युगान्तरों तक व्याप्त है। श्री कृष्ण में सोलह कलाओं की अभिव्यक्ति थी अर्थात मानवीय आत्मा का पूर्णतम विकास उनमें हमें आत्मिक विकास के हर एक स्वरूप का दर्शन होता है। यही है पुरुषोतम स्वरूप जो हमारे लिए मानदण्ड है, आदर्श है।

महापुरुष श्रीकृष्ण

भारतवर्ष के जिन महापुरुषों का मानव-जाति के विचारों पर स्थायी प्रभाव पड़ता है, उनमें श्रीकृष्ण का स्थान प्रमुख है। आज से लगभग पाँच सहस्त्र वर्ष पूर्व एक ही समय में ऐसे दो व्यक्तियों का जन्म हुआ जिनके उदात्त मस्तिष्क की छाप हमारे राष्ट्रीय जीवन पर बहुत गहरी पड़ी है। संयोग से उन दोनों का नाम कृष्ण था। समकालीन इतिहास-लेखकों ने दोनों को भेद करने के लिए एक को 'द्वैपायन कृष्ण' कहा है, जिन्हें आज सारा देश महर्षि वेद व्यास के नाम से जानता है, और जिनके मस्तिष्क की अप्रतिहत प्रतिभा से आज तक हमारे धार्मिक जीवन और विश्वासों का प्रत्येक अंग प्रभावित है। दूसरे देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण थे, जिन्हें अब वास्तव में केवल 'कृष्ण' के नाम से पुकारते हैं। कृष्ण की बाल-लीलाओं के मनोरम आख्यान, उनके गीता-शास्त्र के महान् उपदेश तथा महाभारत के युद्ध में उनके विविध

आर्योचित कर्मों की कथाएँ आज घर-घर में प्रचलित हैं। असंख्य मनुष्यों का जीवन आज कृष्ण के आदर्श से प्रभावित होता है। वस्तुत: हमारे साहित्य का एक बड़ा भाग कृष्ण चरित्र से अनुप्राणित हुआ है। कृष्ण के जीवन की घटनाएँ केवल अतीत इतिहास के जिज्ञासुओं के कौतूहल का विषय नहीं है, वरन् वे धार्मिक जीवन की गतिविधि को नियन्त्रित करने के लिए आज भी भारतीय आकाश में चमकते हुए आकाशद्वीप की तरह सुशोभित और जीवित हैं।

अष्टमी, बुधवार, रोहिणी इस प्रकार के तिथि, वार, नक्षत्र-योग में आधी रात के समय अपने मामा कंस के बन्दीगृह में कृष्ण का जन्म हुआ। इसी बात से उस काल के राजनैतिक चक्र का आभास मिल जाता है। जिस व्यक्ति के जन्म के भय से ही उनके माता-पिता की स्वतंत्रता छिन गई हो, क्या आश्चर्य है यदि उनके जीवन का अधिकांश समय देश के राजनैतिक वातावरण को अत्याचार और उत्पीड़न से मुक्त करने में व्यतीत हुआ हो। उस काल के जो भी उच्छृंखल, लोकपीड़क सत्ताधारी थे, उन सब से ही एक-एक करके कृष्ण की टक्कर हुई। जिस महापुरुष ने योग-समाधि के आदर्श को लेकर ब्रह्म-स्थिति प्राप्त करने का उपदेश दिया हो, जिसका अपना जीवन अविचल ज्ञान-निष्ठा का सर्वोत्तम उदाहरण हो, उसके जीवन में कंस-निपात से लेकर निजवंश के विनाश तक की कथा एक अत्यंत करुण कहानी के रूप में पिरोई हुई है।

कृष्ण का बाल-जीवन तो एक काव्य ही है। जन्म से लेकर अथवा उससे पूर्व ही, उनके सम्बन्ध के अतिमानवी चरित्रों का क्रम आरम्भ हो गया था और उनके वृन्दावन छोड़कर मथुरा आने के समय तक ये बाल-लीलाएँ आकाश में एकत्रित होने वाली सुन्दर सुखद मेघमालाओं की भाँति नाना वर्ण और रूपों से संचित होती रहीं। बिना कहे ही उन्हें हम जानते हैं। हमारे देश के बाल-वर्ग के लिए तो उन कथाओं की रसमय सामग्री एक अत्यंत प्रिय वस्तु है। यमुना नदी और उसके समीप के पीलु के विटपों पर लहलहाती हुई लताओं के कुंजों में कृष्ण के बाल-चरित्रों की प्रतिध्वनि आज भी जीवित काव्य-कथाएँ हैं। यहीं पर उन्होंने उस मल्लविद्या का अभ्यास किया जिसके कारण आगे चलकर मुष्टिक और चाणूर-जैसे पहलवान पछाड़े गए। यमुना के कछारों में ही उस संगीत और नृत्य का जन्म हुआ जो हमारी संस्कृति की एक प्रिय वस्तु है। यहीं गौवंश की वृद्धि और प्रतिपालन के वे प्रयत्न किए गए जिनका पुनरुद्धार हमारे कृषि-प्रधान देश के लिए आज भी एक प्राप्तव्य आदर्श के रूप में हमारे सामने हैं।

इन रमणीय बाल-चरित्रों को सुखदायी भूमिका तैयार करने के बाद श्रीकृष्ण ने एक दूसरे ही प्रकार के जगत् में प्रवेश किया। उनका वृन्दावन छोड़कर मथुरा को आना उस जगत् का देहली-द्वार है। यहाँ जीवन के कठोर सत्य उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके द्वार का सबसे पहला परिवर्तन शूरसेन जन-पद की राजनीति में हुआ। उग्रसेन के पुत्र लोक-पीड़क कंस को राज्यच्युत करके कृष्ण ने उग्रसेन को सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। इस समय वह और उनके बड़े भाई बलराम दोनों किशोरावस्था में पदार्पण कर चुके थे। यमुना के तट पर प्रकृति के विश्वविद्यालय में स्वच्छन्द वायु और आकाश के साथ मिलकर ग्वाल-बालों के बीच में उन्होंने जीवन की एक बड़ी तैयारी कर ली थी परन्तु मस्तिष्क की साधना का अवसर अभी तक उन्हें नहीं मिल सका था। इस कमी को पूर्ण करने के लिए वे सान्दीपनि मुनि के गुरुकुल में प्रविष्ट हुए। कुल पुरोहित गर्गाचार्य और काशी के विद्याचार्य सान्दीपनि इन दो नामों का भगवान कृष्ण के साथ बड़ा मधुर सम्बन्ध है। अवश्य ही गीता के प्रवक्ता को अपने ज्ञान का प्रथम बीज आर्ष-ज्ञान-परम्परा की रक्षा करने वाले तपस्वी ब्राह्मणों से ही प्राप्त हुआ था।

जैसे ही सान्दीपनि ने विद्या समाप्त करके कृष्ण को 'सत्यं वद धर्म चर' वाला अपना अन्तिम उपदेश देकर विदा किया, वैसे ही परिस्थिति ने उनका सम्बन्ध हस्तिनापुर की राजनीति से मिला दिया। वासुदेव और उग्रसेन कृष्ण-बलदेव को लेकर कुरुक्षेत्र स्नान के लिए गए हुए थे। यहीं कुन्ती भी पाण्डवों के साथ आई। यहीं कृष्ण और पाण्डवों के बीच

घनिष्ठ सम्बन्ध का सूत्रपात हुआ जिसके कारण आज तक हम योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर पार्थ का एक साथ स्मरण करते हैं। कंस वध के समय ही कृष्ण अपनी राजनीतिक प्रवृत्ति का परिचय दे चुके थे। हस्तिनापुर की राजधानी के साथ सम्पर्क होने के बाद उस प्रवृत्ति की ओर भी उत्तेजना मिली। उन्होंने यह अनुभव किया कि इस देश में एक बड़ा प्रबल संगठन उन राजाओं का है जो भारतीय राजनीति की प्राचीन लोकपक्षीय परम्पराओं के विरुद्ध निरंकुश होकर राजशक्ति का प्रयोग करते हैं; और जिनके कारण प्रजा में क्षोभ और कष्ट है। कृष्ण का बाल-जीवन लोक की गोद में पला था। वे स्वयं निज जाति की अन्धकार वृष्णि शाखा के, जो एक गणराज्य था, सदस्य थे। इसी कारण उनकी सहानुभूति स्वभावत: लोक के साथ थी। जैसे-जैसे कारण उपस्थित होते गए, एक-एक अत्याचारी शासक से उनका संघर्ष हुआ। मगध की राजधानी गिरीब्रज में बली जरासंध का वध कराकर उन्होंने उनके पुत्र सहदेव का अभिषेक किया। महाभारत में लिखा है, उस समय पृथ्वी पर जरासंध का आतंक था, केवल अन्धक, वृष्णि और कुरुवंशियों ने उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी। इन्हीं दोनों घरानों ने मिलकर उसका अन्त कर दिया। चेदि जनपद में शिशुपाल का एकछत्र शासन था। शिशुपाल दुर्योधन की राजनीति का समर्थक था। दुर्योधन की शक्ति को निर्बल बनाने के लिए जरासंध और शिशुपाल का कण्टक निकालना आवश्यक था। तदनुसार शिशुपाल का वध करके माहिष्मति की गद्दी पर उसके पुत्र धृष्टकेतु को बैठाया। बलिष्ठ पांड्य राज को मल्लयुद्ध में अपने वक्षस्थल की टक्कर से चूर कर डाला। सौभ-नगर में शाल्वराज को वशीभूत किया। सुदूरपूर्व के प्राग्ज्योतिष दुर्ग में भौम नरक का निरंकुश शासन था, जिसने एक सहस्त्र कन्याओं को अपने बन्दीगृह में डाल रखा था। उसकी निर्मोचन नामक राजधानी में सेना सहित मुर और नरक का वध करके कामरूप प्रदेश को स्वतंत्र किया। बाणासुर, कलिंगराज और काशिराज इन सब को कृष्ण से लोहा लेना पड़ा और सब ही उनके बुद्धि-कौशल के आगे परास्त हुए।

कृष्ण की राजनीतिक बुद्धि अद्भुत थी। अर्जुन ने कहा था कि युद्ध करने पर भी कृष्ण मन से जिसका अभिनन्दन करें वह सब शत्रुओं पर विजयी होगा। 'यदि मुझे वज्रधारी इन्द्र और कृष्ण में से एक को लेना पड़े तो मैं कृष्ण को लूँगा।' आर्य विष्णुगुप्त चाणक्य को भी अपनी बुद्धि पर ऐसा ही विश्वास था। उनका मंत्र अमोघ था। जहाँ कोई युक्ति न हो, वहाँ कृष्ण की युक्ति काम आती थी। धृतराष्ट्र की धारणा थी कि जब तक एक रथ पर कृष्ण अर्जुन और अधिज्य गाण्डीव धनुष - ये तीन एक साथ हैं, तब तक ग्यारह अक्षौहिणी सेना होने पर भी कौरवों की विजय असम्भव है।

महाभारत का युद्ध भारतीय इतिहास की एक बहुत दारुण घटना है। इस प्रलयकारी युद्ध में दुर्योधन की ओर से गान्धार, वाल्हीक, काम्बोज, कैकय, सिन्धु, मद्र, त्रिगर्त (कांगड़ा, सारस्वतगण, मालव और अंग) आदि देशों के योद्धा प्रवृत्त हुए। युधिष्ठर की ओर से विराट, पांचाल, काशि, चेटि, संजय आदि वंशों के योद्धा युद्ध के लिए आए। ऐसे भयंकर विनाश को रोकने के लिए कृष्ण से जो प्रयत्न हो सकता था, उन्होंने किया। वे पाण्डवों की ओर से समस्त अधिकारों को लेकर सन्धि करने के लिए हस्तिनापुर गए। वहाँ उन्होंने धृतराष्ट्र की सभा में जो तेजस्वी भाषण दिया उसकी ध्वनि आज भी इतिहास में गुंजायमान है। उन्होंने कहा 'कौरवों और पाण्डवों में बिना वीरों का नाश हुए ही शान्ति हो जाए, मैं यही प्रार्थना करने आया हूँ'

धृतराष्ट्र ने कहा - 'हे कृष्ण, मैं समझता हूँ, पर तुम दुर्योधन को समझा सको तो प्रत्यन करो'

कृष्ण ने दुर्योधन से कहा - 'शमेशर्म भवेत्तात' अर्थात ''हे तात ! शांति से ही तुम्हारा और जगत का कल्याण होगा।''

दुर्योधन ने सब कुछ सुनकर कहा - ''कृष्ण ! सुई की नोंक के बराबर भी भूमि पाण्डवों के लिए मैं नहीं छोड़ सकता।'' बस वही युद्ध का अपरिहार्य आह्वान था। देव की इच्छा के सामने भीष्म और द्रोण जैसे नर रत्नों की भी रक्षा न हो सकी।

कृष्ण को हमारे देश के लेखकों ने सोलह कला का अवतार कहा है। इसका तात्पर्य क्या है ? यह स्पष्ट है कि भिन्न भिन्न वस्तु को नापने के लिए भिन्न-भिन्न परिमाणों का प्रयोग किया जाता है। दूरी के नापने के लिए और नाप है, काल के लिए और हैं तथा बोझे के लिए और है। इसी प्रकार मानवी पूर्णता को प्रकट करने के लिए कला की नाप है। सोलह कलाओं से चन्द्रमा का स्वरूप सम्पूर्ण होता है। मानवी आत्मा का पूर्णतम विकास भी सोलह कलाओं के द्वारा प्रकट किया जाता है। कृष्ण में सोलह कलाओं की अभिव्यक्ति थी अर्थात मनुष्य का मस्तिष्क मानवीय विकास का जो पूर्णतम आदर्श बना सकता है, वह हमें कृष्ण में मिलता है। नृत्य, गीत, वादित्र, वाग्मिता, राजनीति,योग, आध्यात्मक ज्ञान सबका एकत्र समवाय कृष्ण में पाया जाता है। गोदोहन से लेकर राजसूय-यज्ञ में पुरोहितों के चरण धोने तक तथा सुदामा की मैत्री से लेकर युद्ध भूमि में गीता के उपदेश तक उनकी ऊँचाई का एक पैमाना है, जिस पर सूर्य की किरणों की रंग-बिरंगी पेटी की तरह हमें आत्मिक विकास के हर एक स्वरूप का दर्शन होता है। कृष्ण भारतवर्ष के लिए एक अमूल्य निधि हैं, वे हमारी राष्ट्रीय संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं। जिस प्रकार पूर्व और पश्चिम के समुद्रों के बीच प्रदेश को व्याप्त करके गिरिराज हिमालय पृथ्वी के मानदण्ड की तरह स्थित है, उसी प्रकार ब्रह्मधर्म और क्षात्रधर्म इन दो मर्यादाओं के बीच की उच्चता को व्याप्त करके श्रीकृष्ण-चरित्र पूर्ण मानवी-विकास के मान-दण्ड की तरह स्थित है।

◆◆◆

अभ्यास

बोध प्रश्न -

अति लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. ''कृष्ण द्वैपायन'' को देश किस नाम से जानता है ?
2. भारतीय साहित्य का एक बड़ा भाग किस चरित्र से अनुप्राणित है ?
3. गीताशास्त्र के महान् उपदेशक कौन हैं ?
4. कृष्ण, बलदेव और कुंती पांडवों के घनिष्ठ सम्बन्धों का सूत्रपात किस स्थान पर हुआ ?
5. कृष्ण ने शिशुपाल का वध कर माहिष्मति की गद्दी पर किसे बैठाया ?

लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. भारतीय राष्ट्रीय जीवन पर किन दो समकालीन व्यक्तियों के उदात्त मस्तिष्क की गहरी छाप है ?
2. महर्षि वेदव्यास क्यों प्रसिद्ध हैं ?
3. श्रीकृष्ण ने एक दूसरे ही प्रकार के जगत में कब प्रवेश किया ?
4. मस्तिष्क - साधना हेतु श्रीकृष्ण कहाँ गए, वहाँ उन्हें क्या लाभ हुआ ?
5. कृष्ण जन्म सम्बन्धी कुछ तथ्य लिखिए ?
6. श्रीकृष्ण हस्तिनापुर क्यों गए ? हस्तिनापुर जाकर कृष्ण ने क्या किया ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

1. ''श्रीकृष्ण का जीवन तो एक काव्य ही है'' इस उक्ति को सिद्ध कीजिए ।
2. श्रीकृष्ण ने रमणीय बाल-चरित्रों की सुखदायी भूमिका के रूप में कौन-कौन से कार्य किए ?
3. हस्तिनापुर से सम्पर्क के पश्चात् श्रीकृष्ण को जो अनुभव हुआ उसे अपने शब्दों में लिखिए।
4. श्रीकृष्ण के बुद्धिकौशल के आगे कौन-कौन से अराजक व्यक्तित्व परास्त हुए ?
5. ''महाभारत का युद्ध भारतीय इतिहास की एक दारुण घटना है'' इस उक्ति की सार्थकता में अपने विचार प्रकट कीजिए।
6. श्रीकृष्ण को सोलह कलाओं का अवतार क्यों कहा गया है ?

भाषा अध्ययन

ध्यान से पढिए -

वह प्रतिदिन विद्यालय जाता है। जहाँ वह कभी-कभी कार्यदक्ष शिक्षकों से देश-सेवा और समाजोद्धार की बातें सुनता है। वहीं दोपहर में अवकाश मिलने पर चिन्तामुक्त होकर सहपाठियों के साथ खेलता है।

उपर्युक्त रेखांकित शब्दों का विश्लेषण निम्नानुसार किया जा सकता है -

प्रथम पद		दूसरा पद		समस्त पद	अर्थ
प्रति	+	दिन	=	प्रतिदिन	दिन-दिन
कार्य	+	दक्ष	=	कार्यदक्ष	कार्य में दक्ष
देश	+	सेवा	=	देश सेवा	देश की सेवा
दो	+	पहर	=	दोपहर	दो पहरों का समाहार
चिन्ता	+	मुक्त	=	चिंतामुक्त	चिंता से मुक्त

दो या दो से अधिक शब्दों के योग से जब नया शब्द बन जाता है तब उसे सामासिक शब्द और उन शब्दों के योग को समास कहते हैं।

जिन मूलशब्दों के योग से समास बना है उनमें से पहले पद को पूर्व पद तथा दूसरे पद को उत्तर पद कहते हैं। जैसे -कार्यकुशल - कार्य और कुशल दो शब्दों के योग से बना है। इसमें 'कार्य' पूर्वपद 'कुशल' उत्तरपद तथा 'कार्यकुशल' सामासिक शब्द है।

इसे जानिए -

1. समास में कम से कम दो शब्दों या पदों का योग होता है।
2. मिलने वाले पदों की विभक्ति प्रत्यय का लोप हो जाता है।
3. संस्कृत तत्सम के होने पर समास में संधि भी हो सकती है।
   (यथा-शीतोष्ण=शीत+उष्ण (यहाँ अ+उ=ओ हो गया है, अत: सन्धि भी है)
4. समास सजातीय शब्दों का होता है। जैसे-धर्मशाला परन्तु मजहब शाला नहीं होगा। इसमें बहुत से अपवाद भी है, जैसे-बम वर्षा, रेलगाड़ी, स्टेशन अधीक्षक, जिलाधीश, रसोईखाना आदि।
5. समास का विग्रह होता है। सामासिक शब्दों में मिले हुए शब्दों को पृथक करने की प्रक्रिया समास विग्रह कहलाता है।

यह भी जानें -

1 **अव्ययी भाव समास**

इन शब्दों को पढ़िए -

	समास	- प्रथम पद -	द्वितीयपद	विग्रह
१	यथाशक्ति	यथा (अव्यय)	शक्ति (विशेषण)	शक्ति के अनुसार
२	प्रतिदिन -	प्रति (अव्यय)	दिन (संज्ञा)	प्रत्येक दिन
३	भरपेट-	भर (अव्यय)	पेट (संज्ञा)	पेट भर के
४	भरसक-	भर (अव्यय)	सक (क्रिया)	शक्ति भर
५	प्रत्येक-	प्रति (अव्यय)	एक (विशेषण)	एक एक

इन समासिक शब्दों में प्रथमपद प्रधान और अव्यय है उत्तरपद संज्ञा, विशेषण या क्रिया है ।

जिन सामासिक शब्दों में प्रथमपद प्रधान और अव्यय होता है, उत्तर पद संज्ञा, विशेषण या क्रिया विशेषण होता है, वहाँ अव्ययी भाव समास होता है ।

प्रश्न - निम्नलिखित शब्दों का समास विग्रह कीजिए -

देवकी पुत्र, कृष्ण चरित्र, बन्दीगृह, मेघमाला, प्रतिध्वनि

सन्धि और समास में अन्तर -

	सन्धि	समास
1.	सन्धि में दो वर्णों का योग होता है।	समास में दो पदों का योग होता है।
2.	सन्धि में दो वर्णों का मेल और विकार होता है	समास में पदों/शब्दों के प्रत्यय का लोप हो जाता है।
3.	सन्धि को तोड़ना विच्छेद कहलाता है।	समास को तोड़ना विग्रह कहलाता है।

योग्यता विस्तार

1. निबंध के आधार पर कृष्ण युगीन भारतीय राजनीति एवं समाज की जो तस्वीर बनती है। उसे अपने शब्दों में लिखिए ।
2. महापुरुषों के जीवन चरित्र खोजकर पढ़िए और अपने साथियों को सुनाइए।
3. महापुरुषों के चित्रों का एलबम तैयार कीजिए।
4. कृष्ण साहित्य की पुस्तकों को सूची बद्ध कीजिए।
5. सान्दीपनी आश्रम कहाँ स्थित था? उस शहर के बारे में अधिक जानकारी एकत्रित कीजिए।

शब्दार्थ

सहस्त्र = हजार। **अनुप्राणित** = प्रेरित, समर्थित, पोषित। **अतीत** = बीता हुआ। **भेद** = भिन्न, अलग। **जिज्ञासुओं** = जानने की इच्छा रखने वाले। **बन्दीगृह** = कारागार। **अप्रतिहत** = अबाधित (किसी के द्वारा किसी प्रकार से न रुकना)। **मल्लविद्या** = कुश्ती की शिक्षा। **प्रतिभा** = कौशल। **प्रतिध्वनि** = आवाज जो टकराकर पुनः सुनाई दे। **मनोरम** = सुंदर। **लोक पीड़क** = संसार भर को पीड़ा पहुँचाने वाला। **राज्यच्युत** = राज्य से अलग। **बलदेव** = बलराम (कृष्ण के बड़े भाई)। **पार्थ** = अर्जुन। **प्रवृत्ति** = स्वभाव, आदत। **अभिषेक** = तिलक। **अमोघ** = अचूक। **अपरिहार्य** = जिसे त्यागा न जा सके।

परंपरा बनाम आधुनिकता

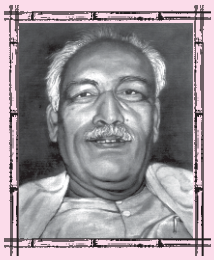

लेखक परिचय – हिन्दी साहित्य के उन्नायक – आलोचक, निबंधकार एवं उपन्यासकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म 19 अगस्त 1907 ई. में उत्तरप्रदेश के बलिया जिले के 'आरत दुबे का छपरा' (ओझोलिया) ग्राम में हुआ था। आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से ज्योतिष एवं संस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्त की। सन् 1930 से 1950 तक शान्ति निकेतन के हिन्दी भवन में निदेशक के पद् पर आपने कार्य किया। यहीं आप गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं आचार्य क्षिति मोहन सेन के सम्पर्क में आए और साहित्य साधना में प्रवृत्त हुए। आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष भी रहे। अपनी साहित्यक सेवाओं के कारण आपको साहित्य अकादमी पुरस्कार एवं पद्म भूषण अलंकरण से सम्मानित किया गया।

द्विवेदी जी का निधन 19 मई 1979 ई. को हुआ।

साहित्य का इतिहास, आलोचना, शोध एवं उपन्यास के क्षेत्र में द्विवेदी जी का उल्लेखनीय योगदान है। भारतीय संस्कृति 'अशोक के फूल', 'कुटज', 'विचार और वितर्क', 'विचार प्रवाह' आपके निबंध संकलन हैं। 'सूर साहित्य', 'कबीर', 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', आलोचना एवं इतिहास के ग्रंथ हैं। 'वाणभट्ट की आत्मकथा', 'पुनर्नवा', 'चारुचन्द्रलेख', 'अनामदास का पोथा' प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

द्विवेदी जी का अध्ययन क्षेत्र बहुत व्यापक है। आपका संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, बंगला आदि भाषाओं पर विशेष अधिकार के साथ इतिहास, दर्शन, धर्मशास्त्र आदि विषयों का गहरा अध्ययन भी है। आपने रचनाओं के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया है। द्विवेदी जी की भाषा बोधगम्य, रुचिकर एवं प्रवाहमय है। शब्द चयन एवं वाक्य-विन्यास सुगठित है। लालित्य एवं प्रांजलता भाषा की प्रमुख विशेषता है। आपने भाषा को गतिशील एवं प्रभावी बनाने के लिए लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं संस्कृत के प्रभाव के कारण वाक्य विन्यास दीर्घ एवं भाषा क्लिष्ट हो गई है फिर भी उसमें अलंकारिकता, चित्रमयता एवं सजीवता आदि गुणों के दर्शन होते हैं।

आपकी भाषा के तीन रूप है – तत्सम प्रधान, सरल तद्भव प्रधान एवं उर्दू, अंग्रेजी युक्त व्यावहारिक। आपकी रचनाओं में चिन्तन प्रधान तर्क शैली एवं भावात्मक शैली का ओज एवं प्रवाह दिखलाई देता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी आलोचना, समीक्षा, निबंध एवं उपन्यास के क्षेत्र में अपने सरस एवं पाण्डित्यपूर्ण योगदान से साहित्य की सेवा की है। साहित्य की अधुनातन विकास यात्रा में द्विवेदी जी का स्थान गौरवपूर्ण है।

केन्द्रीय भाव

'परंपरा बनाम आधुनिकता' विचारात्मक निबंध है। लेखक ने तार्किक दृष्टि से परंपरा और आधुनिकता की विवेचना करते हुए निष्कर्ष दिया है कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं और दोनों ही गतिशील प्रक्रिया की देन हैं। बुद्धिमान आदमी एक पैर से खड़ा रहता है, दूसरे से चलता है। खड़ा पैर परंपरा है और चलता पैर आधुनिकता। आधुनिकता का अपने-आप में कोई मूल्य नहीं है। परंपरा से हमें मूल्यों का रूप प्राप्त होता है। कोई भी आधुनिक विचार आसमान से नहीं पैदा होता । सबकी जड़ें परंपरा की गहराई तक होती हैं। लेखक ने अपने कथन के समर्थन में भाषा और साहित्य का उदाहरण देकर बड़े कौशल और युक्ति से स्पष्ट कर दिया कि परंपरा की बुनियाद पर ही आधुनिकता टिकी है। आधुनिकता में गतिशीलता है, आधुनिकता में बौद्धिकता का समर्थन है । परंपरा आधुनिकता को आधार प्रदान कर उसे शुष्क और नीरस बुद्धि विलास होने से बचा लेती है। निबंध विश्लेषणात्मक शैली में रचा गया है। निबंध में विचार-तत्व प्रधान है।

परंपरा बनाम आधुनिकता

ऊपर-ऊपर से ऐसा लगता है कि परंपरा, अब तक के सभी आचार-विचारों का जमाव है। सभी पुरानी बातें परंपरा कह दी जाती हैं। जब कि सत्य यह है कि परंपरा भी एक गतिशील प्रक्रिया की देन है।

हमने अपनी पिछली पीढ़ी से जो कुछ प्राप्त किया है, वह समूचे अतीत की पूंजीभूत विचार-राशि नहीं है। सदा नए परिवेश में कुछ पुरानी बातें छोड़ दी जाती हैं और नई बातें जोड़ दी जाती हैं। एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को हूबहू वही नहीं देती, जो अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी से प्राप्त करती है। कुछ-न-कुछ छँटता रहता है, बदलता रहता है, जुड़ता रहता है। यह निरंतर चलती रहने वाली प्रक्रिया ही परंपरा है।

'परंपरा' का शब्दार्थ है, एक दूसरे को, दूसरे से तीसरे को दिया जाने वाला क्रम। कभी-कभी गलत ढंग से इसे अतीत के सभी आचार-विचारों का बोधक मान लिया जाता है, पर परंपरा से हमें समूचा अतीत नहीं प्राप्त होता। उसका निरंतर निखरता, छँटता, बदलता रूप प्राप्त होता है। उसके आधार पर हम आगे की जीवन पद्धति को रूप देते हैं।

एक उदाहरण लें। भाषा हमें परंपरा से प्राप्त हुई है। वह वैदिक युग की भाषा नहीं है, अपभ्रंश युग की नहीं है, यहाँ तक कि वह आज से पच्चीस वर्ष पूर्व की भी नहीं है। काल-प्रवाह में बहती हुई, समकालीन संदर्भ से बिखरती हुई, अनावश्यक बातों की छँटनी करती हुई, नए उपादानों से बढ़ती और बदलती हुई वह जिस रूप में इस पीढ़ी को प्राप्त हुई है, वही आज का परंपरा-प्राप्त रूप है।

वह समूचे अतीत के शब्दों को लिए-लिए यहाँ तक नहीं पहुँची है। शब्द बदल गए हैं, ऐसे भी शब्द उसमें आ गए हैं, जो पहले नहीं थे, ऐसे बहुत से छूट गए हैं, जो पहले प्रचलित थे, ऐसे भी बहुत हैं, जो लगते तो पुराने हैं, पर जिनके अर्थ में परिवर्तन हो गया है, और तो और, वाक्य-विधान और व्याकरण में भी परिवर्तन हुए हैं। फिर भी वह अतीत से एकदम असंयुक्त भी नहीं है। वही स्थिति समस्त आचार-विचारों के क्षेत्र में है।

इस प्रकार परंपरा का अर्थ विशुद्ध अतीत नहीं है, बल्कि एक निरंतर गतिशील जीवंत प्रक्रिया है। उसमें हमें जो कुछ मिलता है, उस पर खड़े होकर आगे के लिए कदम उठाते हैं। नीति काव्य में इसी बात को इस प्रकार कहा गया है - 'चलत्येकेन् पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान', अर्थात् बुद्धिमान आदमी एक पैर से खड़ा रहता है, दूसरे से चलता है।

यह केवल व्यक्ति-सत्य नहीं है, सामाजिक संदर्भ में भी यही सत्य है। खड़ा पैर परंपरा है, और चलता पैर आधुनिकता। दोनों का पारस्परिक संबंध खोजना बहुत कठिन नहीं, एक के बिना दूसरी की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

परंतु न तो परंपरा और न आधुनिकता ही काल वाचक शब्द रह गए हैं। ये दोनों मनोभाव-वाचक अधिक हो गए हैं - वर्तमान परिस्थिति में तो कहीं अधिक मात्रा में।

'आधुनिकता' क्या है ? शब्दार्थ पर विचार करें, तो 'अधुना' या इस समय जो कुछ है, वह आधुनिक है। पर 'आधुनिक' का यही अर्थ नहीं है। हम बराबर देखते हैं कि कुछ बातें इस समय भी ऐसी हैं, जो आधुनिक नहीं हैं, बल्कि मध्यकालीन हैं। सभी भावों के मूल में कुछ पुराने संस्कार और नए अनुभव होते हैं।

यह समझना गलत है कि किसी देश के मनुष्य सर्वदा किसी विचार या आचार को ही समान मूल्य देते आए है। पिछली शताब्दी में हमारे देशवासियों ने अपने अनेक पुराने संस्कारों को भुला दिया है और बचे संस्कारों के साथ नए अनुभवों को मिलाकर नवीन मूल्यों की कल्पना की है।

उदाहरण के लिए साहित्य को लें। आज से दो सौ वर्ष पहले के सहृदय को उस प्रकार के दुखांत नाटकों की रचना अनुचित जान पड़ती थी, जिनके कारण यवन साहित्य इतना महिमामंडित समझा जाता है और जिन्हें लिखकर

शेक्सपियर संसार के अप्रतिम नाटककार बन गए हैं। उन दिनों कर्मफल प्राप्ति की आवश्यंभाविता और पुनर्जन्म में विश्वास इतने दृढ़ भाव से बद्धमूल थे कि संसार की समंजस्य व्यवस्था में किसी असामंजस्य की बात सोचना एकदम अनुचित जान पड़ता था।

परंतु अब वह विश्वास शिथिल होता जा रहा है और मनुष्य के इसी जीवन को सुखी और सफल बनाने की अभिलाषा प्रबल हो गई है। समाज के निचले स्तर में जन्म होना अब किसी पुराने पाप का फल अतएव घृणास्पद नहीं माना जाता; बल्कि मनुष्य की विकृत समाज-व्यवस्था का परिणाम है; ऐसा माना जाने लगा है।

साहित्य के जिज्ञासु को इन परिवर्तित और परिवर्तमान मूल्यों की ठीक-ठीक जानकारी नहीं हो, तो वह बहुत-सी बातों के समझने में गलती कर सकता है; और फिर परिवर्तित और परिवर्तमान मूल्यों की ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त करके ही हम यह सोच सकते हैं कि परिस्थितियों के दबाव से जो परिवर्तन हुए हैं, उनमें कितना अपरिहार्य है कितना अवांछनीय है और कितना ऐसा है, जिसे प्रयत्न करके वांछनीय बनाया जा सकता है।

यह गलत धारणा है कि मनुष्य कभी पीछे लौटकर हूबहू उन्हीं विचारों को अपनाएगा जो पहले थे। जो लोग मध्ययुग की भाँति सोचने की आदत को एक भयंकर वात्याचक्र की उलझन से निकलने का साधन समझते हैं, वे गलती करते हैं। इतिहास चाहे और किसी क्षेत्र में अपने को दोहरा लेता हो, विचारों के क्षेत्र में जो गया, सो गया। उसके लिए अफसोस करना बेकार है। पर इतिहास हमारी मदद अवश्य करता है। रह-रह कर प्राचीन काल के मानवीय अनुभव हमारे साहित्यकारों के चित्त को चंचल और वाणी को मुखर बनाते अवश्य हैं, पर वे व्यक्ति साहित्यकार की विशेषता के रूप में ही जी सकते हैं।

आधुनिक समाज ने निश्चित रूप से मनुष्य की महिमा स्वीकार कर ली है। अगला कदम सामूहिक मुक्ति का है- सब प्रकार के शोषणों से मुक्ति का। अगली मानवीय संस्कृति मनुष्य की समता और सामूहिक मुक्ति की भूमिका पर खड़ी होगी। इतिहास-अनुभव इसी की सिद्धि के साधन बनकर कल्याणकर और जीवनप्रद हो सकते हैं।

इस प्रकार हमारी चित्तगत उन्मुक्तता पर एक नया अंकुश और बैठ रहा है - व्यष्टि-मानव के स्थान पर समष्टि-मानव का प्राधान्य। परन्तु साथ ही उसने मनुष्य को अधिक व्यापक आदर्श और अधिक प्रभावोत्पादक उत्साह दिया है। जब-जब ऐसे बड़े आदर्श के साथ मनुष्य का योग होता है, तब-तब साहित्य नए काव्य रूपों की उद्‌भावना करता है। इस बार भी ऐसा ही हुआ।

कभी-कभी मनुष्य किसी विशेष प्रकार के आचार या विचार को ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रखने का प्रयास करता है। कितना कर पाता है, यह विवादास्पद विषय है। मनुष्य के मन में अनेक प्रकार के मोह हैं। यह भी एक है। जब प्रयत्नपूर्वक किसी आचार या विचार को पीढ़ियों तक सुरक्षित रखने का प्रयत्न होता है, तो उसे 'संप्रदाय' कहा जाता है। संप्रदाय, परंपरा नहीं है। 'संप्रदाय' शब्द आजकल थोड़े भिन्न अर्थ में लिया जाने लगा है, पर उसका मूल अर्थ गुरु-परंपरा से प्राप्त विशुद्ध आचार-विचारों का संरक्षण ही है। इसमें प्रयत्नपूर्वक अविकृत रखने की भावना मुख्य रूप से काम करती है। परंपरा सहज है, संप्रदाय प्रयत्नसिद्ध।

आधुनिकता 'सम्प्रदाय' का विरोध करती है, क्योंकि आधुनिकता गतिशील प्रक्रिया है, 'संप्रदाय' स्थिति-संरक्षक। परंतु परम्परा से आधुनिकता का वैसा विरोध नहीं होता। दोनों की गतिशील प्रक्रियाएँ हैं। दोनों में अंतर केवल यह है कि परम्परा यात्रा के बीच पड़ा हुआ अंतिम चरण है, जबकि आधुनिकता आगे बढ़ा हुआ गतिशील कदम है।

आधुनिकता अपने आपमें कोई मूल्य नहीं है। मनुष्य के अनुभवों द्वारा जिन महनीय मूल्यों को उपलब्ध किया है, उन्हें नए संदर्भो में देखने की दृष्टि आधुनिकता है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है। संदर्भ बदल रहे हैं, क्योंकि नई जानकारियों से नए साधन और नए उत्पादन सुलभ होते जा रहे हैं। बहुत-सी पुरानी बातें भुलाई जा रही हैं, नई सामग्रियाँ और नए कौशल नवीन संदर्भो की रचना कर रहे हैं। उनमें बहु-समादृत मानवीय मूल्यों का रूप कुछ बदला नजर आ रहा

है। परंतु फिर भी उनका शाश्वत रूप बना रहता है। परंपरा से हमें इन मूल्यों का वह रूप प्राप्त होता है, जो अतीत के संदर्भ में बना था।

कोई भी आधुनिक विचार आसमान से नहीं पैदा होता है। सबकी जड़ परंपरा में गहराई तक गई हुई है। सुंदर-से-सुंदर फूल यह दावा नहीं कर सकता कि वह पेड़ से भिन्न होने के कारण उससे एकदम अलग है। कोई भी पेड़ दावा नहीं कर सकता कि वह मिट्टी से भिन्न होने के कारण उससे एकदम अलग है। इसी प्रकार कोई भी आधुनिक विचार यह दावा नहीं कर सकता कि वह परंपरा से कटा हुआ है। कार्य-कारण के रूप में, आधार-आधेय के रूप में परंपरा की एक अविच्छेद्य शृंखला अतीत में गहराई तक-बहुत गहराई तक गई हुई है।

आधुनिकता, ज्ञान की अत्याधुनिक उपलब्धियों के आलोक के रूप ग्रहण करने का प्रयास करती है, इसीलिए बौद्धिक है। परंपरा केवल मनुष्यों के प्रयोजनों से छँटती-कटती ही नहीं है, उसकी विनोदनी और कुतूहली वृत्ति से अन्यथा रूप भी ग्रहण करके आती है। इसीलिए वह पूरी इतिहास-सम्मत नहीं होती है। कई बार शब्द उसमें नया रस भरते हैं, कई बार सामयिक विश्वास उसे नए आकार-प्रकार देते हैं। इतिहास से वह भिन्न हो जाती है और बाह्य यथार्थ के तर्कसम्मत रूप से भी अलग हो जाती है।

परंपरा इतिहास-सम्मत नहीं हो सकती, पर भूले इतिहास को खोज निकालने का सूत्र देती है। इस इतिहास से निखरी दृष्टि आधुनिकता की पहली शर्त है। जिसे इतिहास की नई दृष्टि प्राप्त नहीं है, वह हजारों वर्षो के मानवीय प्रयासों का रसास्वाद नहीं कर सकता, भविष्य के मानव-चित्र को सरस-कोमल बनाने वाले प्रयासों की कल्पना नहीं कर सकता।

जो मनुष्य, मनुष्य को उसकी सरल वासनाओं और अद्‌भुत कल्पनाओं के राज्य से वंचित करके भविष्य में उसे सुखी बनाने के सपने देखता है, वह ठूँठ तर्क परायण ही हो सकता है।

परंपरा आधुनिकता को आधार देती है, उसे शुष्क और नीरस बुद्धि-विलास बनने से बचाती है। उसके प्रयासों को अर्थ देती है, उसे असंयत और विशृंखल उन्माद से बचाती है। परंपरा और आधुनिकता ये दोनों परस्पर विरोधी नहीं, परस्पर पूरक हैं।

◆◆◆

अभ्यास

बोध प्रश्न -

अति लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. परंपरा क्या है ?
2. दो शताब्दी पूर्व किस प्रकार के नाटकों की रचना अनुचित जान पड़ती थी ?
3. मनुष्य की महिमा किसे स्वीकार है ?
4. अगली मानवीय संस्कृति का स्वरूप क्या होगा ?
5. आधुनिकता को असंयत और विशृंखल होने से कौन बचाता है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. भाषा की प्राप्ति किस प्रकार होती है ?
2. नीति वाक्य में बुद्धिमान के विषय में क्या कहा गया है ?
3. साहित्य के जिज्ञासु समझने में गलती कब कर सकते हैं ?
4. चित्तगत उन्मुक्तता पर कौन सा नया अंकुश लग रहा है ?
5. आधुनिकता सम्प्रदाय का विरोध क्यों करती है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

1. परम्परा और आधुनिकता की तुलनात्मक व्याख्या कीजिए ।
2. पाठ के आधार पर आधुनिकता का व्यापक अर्थ समझाइए ।
3. साहित्य के क्षेत्र में इतिहास किस प्रकार मदद करता है ?
4. 'आधुनिकता अपने आप में कोई मूल्य नहीं है।' इस कथन को स्पष्ट कीजिए ।
5. विचार-विस्तार कीजिए - 'कोई भी आधुनिक विचार आसमान में नहीं पैदा होता है।'

भाषा अध्ययन -

1. निम्नलिखित शब्द समूह के लिए एक शब्द लिखिए -
   अ) निरन्तर चलने वाला-
   ब) वह समय जो बीत चुका है-
   स) नीति का बोध कराने वाला वाक्य-
   द) मन के भाव-
   इ) महिमा से परिपूर्ण-
2. निम्नलिखित शब्दों का संधि-विच्छेद करते हुए संधि का नाम बताइए -
   (1) मनोभाव (2) पुनर्जन्म (3) निर्बल (4) प्राग्ज्योतिष (5) अत्याधुनिक (6) महर्षि
   (7) आर्योचित (8) पुनरुद्धार
3. निम्नलिखित पदों का समास विग्रह करते हुए समास का नाम लिखिए -
   (1) इतिहास-सम्मत (2) बाललीला (3) कालप्रवाह (4) परम्परा-प्राप्त (5) विचार-राशि
   (6) देवकीपुत्र (7) राज्यच्युत (8) सत्ताधारी

योग्यता विस्तार

1. ''परम्परा और आधुनिकता'' इस विषय पर कक्षा में वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन कीजिए।
2. सभ्यता और संस्कृति में अन्तर स्पष्ट करते हुए 150 शब्दों का एक लेख लिखिए ।
3. विद्यालयीन गतिविधियों पर एक आलेख तैयार कीजिए जिसमें विद्यालयीन परम्पराओं के साथ आधुनिकता का समन्वय हो।

शब्दार्थ

पूंजीभूत = एकत्र किया हुआ, एक जगह पर केन्द्रित। **पूर्ववर्ती** = पहले का। **वात्याचक्र** = भँवर। **उन्मुक्तता** = स्वतंत्रता। **अविकृत** = विकार रहित। **शृंखला** = कड़ियाँ, सांकल। **अविच्छेद्य** = विच्छेद रहित। **उन्माद** = पागलपन, सनक। **अप्रतिम**=अनुपम, बेजोड़। **बद्धमूल** = जड़ से बँधा हुआ। **घृणास्पद** = घृणा के योग्य। **अपरिहार्य** = न त्यागने योग्य, अनिवार्य। **अवांछनीय** = जिसकी चाह न की जाए। **व्यष्टि** = व्यक्ति से संबंधित। **समष्टि** = सम्पूर्ण समाज से सम्बन्धित। **असामंजस्य** = बिना ताल=मेल के, समन्वय रहित।

गेहूँ और गुलाब

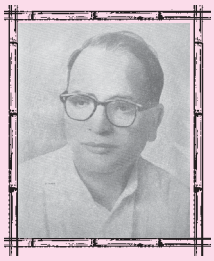

लेखक परिचय – रामवृक्ष बेनीपुरी का जन्म जनवरी सन् 1902 ई. में बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के बेनीपुर गाँव में एक साधारण किसान परिवार में हुआ था। बचपन में ही आपके माता-पिता का देहान्त हो गया। साहित्य सम्मेलन से विशारद करने के बाद, मैट्रिक परीक्षा में सम्मिलित होने के पूर्व सन् 1920 ई. में असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के कारण आपकी स्कूली शिक्षा अधूरी रह गई। 'रामचरित मानस' जैसे धार्मिक एवं साहित्यिक ग्रन्थ के पठन-पाठन से आपमें साहित्य एवं काव्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हुई। साहित्य सेवा के क्षेत्र में आपका पदार्पण पत्रकारिता के माध्यम से हुआ। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही आप पत्र-पत्रिकाओं में लिखने लगे। आपने लगभग एक दर्जन पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन कार्य किया है, जिसमें तरुण भारत, किसान मित्र, योगी, जनता आदि साप्ताहिक एवं युवक, बालक, लोक संग्रह, कर्मवीर, हिमालय, नईधारा जैसी मासिक पत्रिकाएँ प्रमुख हैं। आपने संगठनात्मक एवं प्रचारात्मक कार्यों द्वारा हिन्दी की बड़ी सेवा की है। आपका नाम बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संस्थापकों में लिया जाता है। सन् 1946 से 1950 तक सम्मेलन के प्रधानमंत्री तथा सन् 1951 में सभापति रहे हैं। आपने अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन के प्रचारमंत्री का कार्य किया । भारतीय स्वाधीनता की लड़ाई में आपका महत्वपूर्ण योगदान है। सन् 1930 से 1942 तक आपके जीवन का महत्वपूर्ण समय जेल यात्राओं में बीता है। सन् 1968 ई. में आपका देहावसान हो गया।

रामवृक्ष बेनीपुरी की प्रतिभा बहुमुखी है। इन्होंने गद्य की विभिन्न विधाओं कहानी, उपन्यास, नाटक, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, यात्रा वृत्तांत, ललित निबंध आदि को अपनाकर विपुल मात्रा में साहित्य सर्जना की है। इनके लेखन का एक भाग बाल साहित्य के अन्तर्गत आता है। इसके अतिरिक्त टिप्पणियों, अग्रलेखों के साथ-साथ इन्होंने कतिपय ग्रन्थों का सम्पादन कार्य किया एवं टीकाएँ भी लिखी हैं। इन्होंने साठ से अधिक प्रकाशित-अप्रकाशित कृतियों का प्रणयन किया है। 'माटी की मूरतें', 'पतितों के देश में', 'लालतारा', 'चिता के फूल', 'कैदी की अमर ज्योति', 'सिंहल विजय', 'शकुन्तला', 'रामराज्य', 'गाँव का देवता', 'नेत्रदान एवं नया समाज' नाट्य कृतियाँ हैं। इसके अतिरिक्त 'विद्यापति की पदावली', 'बिहारी सतसई की सुबोध टीका', 'जयप्रकाश (जीवनी)' और 'वन्देवाणी विनायकौ' (ललितगद्य) विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

एक विशिष्ट प्रकार की अलंकृत भाषा तथा भावुकता प्रधान शैली के कारण हिन्दी गद्य के इतिहास में बेनीपुरी जी का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। भाषा-शैली रेखाचित्र एवं संस्मरण के लिए अधिक उपयुक्त है। इसलिए आपको इन विधाओं मे पर्याप्त ख्याति मिली है, इसमें 'माटी की मूरतें' अत्यंत प्रसिद्ध है। आपके रेखाचित्र सामाजिक जीवन तथा व्यक्तियों की सहज, सरल अनुकृति हैं। भाषा' में शब्द चित्रों को अत्यंत सजीव बना दिया है। आपकी रचनाओं में विचारों की गंभीर अभिव्यक्ति तथा चिंतन के लिए ओजपूर्ण अलंकृत भाषा-शैली का प्रयोग होने के कारण उपदेशात्मकता ज्यादा प्रखर हो उठी है।

केन्द्रीय भाव

गेहूँ और गुलाब विचार एवं भाव प्रधान ललित निबंध है। गेहूँ भूख एवं शारीरिक आवश्यकताओं का प्रतीक है तो गुलाब मानसिक तृप्ति और सौन्दर्य बौध का। मनुष्य को शरीर रक्षा के साथ-साथ मानसिक तृप्ति की भी आवश्यकता होती है। गेहूँ तक मानव और पशु में कोई अन्तर नहीं होता। मानसिक वृत्तियों को तरजीह देने के कारण गुलाब मानव को पशु से इतर मानव बनाता है। जब तक मानव जीवन में गेहूँ और गुलाब का सन्तुलन रहता है, वह सुखी और सानन्द होता है। यदि शारीरिक और मानसिक तृप्ति के लिए गुलाब को विलासिता, भ्रष्टाचार, गन्दगी और गलीज का प्रतीक बनाया जाएगा तो महाभारत जैसा सर्वनाश-महानाश होगा। आज मनुष्य शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले साधनों की प्रचुरता से प्रभावित हो रहा है। इससे बचने के लिए दो उपाय हैं – इन्द्रियों का संयमन और वृत्तिओं का उन्नयन अर्थात् स्वस्थ शरीर पर तृप्त मानस की प्रभुता। यहाँ गेहूँ बनाम गुलाब को परस्पर पूरक बनाने की आवश्यकता है। एक दिन आएगा जब गुलाब की रंगीन दुनिया आपका मन मोह लेगी। मानव मन और सुंगधमय होगा, गुलाब की दुनिया स्वर्णिम लोक का आनंद देगी।